International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(3): 114-116

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(3): 114-116
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 05-01-2022
Accepted: 11-02-2022

डॉ. जितेंद्र व्यास
विद्यावाचस्पति, संस्कृत विभाग, फैकल्टी ऑफ एस्ट्रोलॉजी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. जितेंद्र व्यास
विद्यावाचस्पति, संस्कृत विभाग, फैकल्टी ऑफ एस्ट्रोलॉजी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान, भारत

मारवाड के कुओं व बावडियों का भूगर्भीय पर्यावरण तथा दकार्गल शास्त्र

डॉ. जितेंद्र व्यास

DOI: https://doi.org/10.22271/23947519.2022.v8.i3c.1743

प्रस्तावना

जल का एक नाम "जीवन" है। विद्वानों का कहना है कि जीवन का प्रारम्भ जल से हुआ है[1]। जल की आवश्यकता मनुष्य व पशु आदि प्राणियों को नित्यप्रति पड़ती है। जल के बिना उनका जीवन चल नहीं सकता। मनुष्य ने अपने ज्ञान व अनुभव के आधार पर पानी की प्राप्ति के लिए सुविधाजनक स्थानों पर गड्ढे खोदने शुरू किये, फलस्वरूप "कुओं की संस्कृति" का विकास हुआ और इसमें जल संग्रहण भी शुरू हुआ। इसी कूप निर्माण व जल संग्रहण की विधी ही जल विज्ञान कहलाती है। आचार्य वराहमिहिर न भूमिगत जल का ज्ञान करने की विधी को "उदकार्गल" कहा है[2]। यथा –

> धर्म्यं यशस्यं च वदाम्यतोअहं दकार्गलं येन जलोपलब्धि : ।
> पुंसां यथांगेषु शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्था : ।।

मानव जाति की उत्पत्ति के साथ ही धरती के नीचे पानी की खोज आरम्भ हुई। इस जल विज्ञान की अवधारणा अत्यन्त प्राचीन है। एक वस्तु स्थिति तो स्वयं सिद्ध है कि पुराने कुओं व बावड़ियों का पानी कभी नहीं सुखता है कितना भी अकाल पड़े फिर भी कुओं के जल स्तर की स्थिति में फर्क कम पड़ता है। इसके तीन मुख्य कारण है –

1. भूमि व वृक्षों के लक्षण से भूमिगत जल परिज्ञान
2. कुओं व बावड़ियों के निर्माण में दिशा विचार
3. कुओं के खोदने में मुहूर्त परिज्ञान।

भूमिगत जल परिज्ञान वृक्षों से तथा वहाँ के भूमि लक्षण से किया जा सकता है। तत्पश्चात् उस भूमि में शिरा ज्ञान की विधी भी अपनायी जाती थी। अन्त में यह सब ज्ञात करने के पश्चात् कुओं को खोदने के लिए मुहूर्त व दिशा का वास्तु अनुसार पूरा ध्यान रखा जाता था। इसी कारण ऐतिहासिक कूपादि आज भी ''वॉटर रिसॉर्स मेनेजमेंट'' जल संग्रहण में अग्रणी है।

अ. भूमि लक्षण से जल परिज्ञान व शिरा ज्ञानः- वैदांग ज्योतिष में भूमि परीक्षण से भू-गर्भ जल की स्थिति का पता लगाने के लिए अमूल्य सूत्र उद्‌धाटित किये हैं। वराहमिहिर ने कहा है कि जहाँ सब जगह गरम और एक जगह ठण्डी भूमि दिखलाई दे अथवा जहाँ सब जगह ठण्डी और एक जगह गरम भूमि प्रतित हो तो उस जगह से 420 अंगुल नीचे जल होता है[3]। तथा जिस भूमि पर पांव रखने से सब दब जाये और बिना रहने के स्थान के बहुत कीड़े हों, उस भूमि के 180 अंगुल नीचे जल का प्रचुर स्त्रोत होता है। जिस भूमि पर पांव ताडन करने से गम्भीर शब्द सुनाई पड़े, उस भूमि से 420 अंगुल पूरी पर जल और उत्तर दिशा में जल धारा (शिरा) होगी[4]। यथा –

> नमते यत्र धारित्री सार्धे पुरूषेअम्बु जागंलानुपे
> कीटा का यत्र विनालयेन ब्रह्वोअम्बु तत्रापि।।

वर्तमान समय में कुआं व बावड़ी संस्कृति का प्रचलन नहीं है। परन्तु पुराने समय में उदकार्गल विषय का पूर्ण ज्ञान लोगों को था जिसमें शिरा ज्ञान बड़ा ही महत्वपूर्ण था। आठ प्रकार की शिराएं होती है[5]। भूमिगत जल या कूपादि का सैकड़ों वर्षो तक जल सम्पन्न रहने का कारण उनमें निहित शिराएं ही है। भूमि में इन्द्र, अग्नि, यम, निऋषि, वरूण, पवन, इन्दु और शंकर, क्रमश चारों दिशाओं के देवता है। इन्हीं 8 दिशाओं के देवताओं के नाम पर ऐन्द्री, आग्नेयी, याम्या, नैऋति, वारूणी, वायवी, चान्द्री और शांकरी पूर्वादिक्रम से आठ शिरायें होती है।

बीच में "महाशिरा" नाम की नवमी शिरा भी होती है[6]। इन्हीं शिराओं का ज्ञान करके ही कूप व वापी इत्यादि का निर्माण किया जाता था। जो कि आज एक काल्पनिक परिदृश्य सा है। पाताल से ऊपर की तरफ मध्य में स्थित व पूर्वादि दिशाओं में स्थिति शिरायें शुभ होती है[7]। जहाँ ऐसी शिरायें प्रदर्शित होती हो वहाँ जल संरक्षण निर्मित खुदवाये गये कूपादि सैकड़ों वर्षो तक जल संरक्षित रखते है - यथा

पातालादूर्ध्वशिरा शुभा चतुर्दिक्षु संस्थिता याक्ष्च ।।

भूमिगत शिरा ज्ञान विधिः- भूमि में शिरा ज्ञान की कई विधियाँ पूर्व समय में अपनायी जाती थी। जैसे भूतल के वृक्षों से शिरा की स्थिति, फल-पुष्पों से शिरा की स्थिति धान्य से जल की स्थिति, वाष्प और धूम से जल ज्ञान विधि।

1. **भूतल के वृक्षों से जल की (शिरा की) स्थितिः**- आचार्य वराहमिहिर ने कहा है कि जिस वृक्ष की एक शाखा नीचे की ओर झुकी हो और पीली पड़ गई हो तो शाखा के नीचे 360 अंगुल लगभग 16 फिट खोदने पर जल मिलता है[8]। जहाँ स्निग्ध छिद्र रहित पत्तो से युक्त, वृक्ष, गुल्म या लता हो वहाँ पर भी 360 अंगुल नीचे जल प्रचुर मात्रा में होता है यह नियम काश, नलिका, नल, खजूर, जामुन अर्जुन, बेंत एवं दूध वाले सभी वृक्ष-लताओं पर लागू होता है[9]। यदि जल रहित प्रदेश अर्थात् निर्जल भूमि क्षेत्र वैत का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दूरी पर नीचे डेढ़ पुरूष (पोरसा) अर्थात् 160 अंगुल पर पानी मिलेगा। यहाँ पश्चिम शिरा होगी[10]। और यदि निर्जल प्रदेश में जामुन के वृक्ष से उत्तर दिशा में तीन हाथ दूरी पर नीचे दो पोरसा दूरी पर पूर्वा नामक शिरा प्राप्त होती है[11]। यथा -

जम्ब्वाश्र्चोदग्धसतौस्त्रिभिः शिराधो नरद्वये पूर्वा ।।

यदि जलरहित प्रदेश में पलाश से युक्त वेर हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दूरी पर सवा तीन पोरसा नीचे सुस्वाद और दीर्घकाल तक रहने वाला जल होता है[12]। इसी प्रकार सुखे प्रदेश में कोई सुखिन वृक्ष दिखाई दे तो उसके वायव्य कोण में दो हाथ दूरी पर तीन पोरसा नीचे "कुमुदा" नाम की शिरा होती है यथा -

शोणाकतरोरपरोत्तरे शिखा द्वौ करावतिक्रम्य ।
कमुदा नाम शिरा सा पुरूषत्रयवाहिनी भवति ।।[13]

कदम्ब का वृक्ष से भी शिरा ज्ञान होता है जिसे उत्तरा शिरा कहा जाता है। यदि कदम्ब वृक्ष से पश्चिम में बांबी हो उससे से दक्षिण दिशा में तीन हाथ की दूरी पर पोने छः पोरसा (690) अंगुल नीचे जल होता है। ऐसी जल शिरा अति विपुल होकर लोह की गन्ध से युक्त होती है[14]। पश्चिम वाहिनी व अन्तर वाहिनी शिराएं कपित्य वृक्ष से ज्ञात कर सकते है जैसे यदि कपित्य वृक्ष से दक्षिण बांबी हो तो उस वृक्ष से सात हाथ उत्तर दिशा में पांच पोरसा (600 अंगुल) नीचे खोदने पर जल अवश्य ही मिलता है। खोदते समय वहाँ पश्चिम वाहिनी शिरा और उसके बाद उत्तरा शिरा मिलती है[15]। इसी प्रकार दक्षिण शिरा भी वृक्ष से ही ज्ञात की जा सकती है जैसे यदि बांबी से युक्त नारियल का वृक्ष हो तो उस वृक्ष से छः हाथ पश्चिम दिशा में चार पोरसा (480 अंगुल) नीचे दक्षिण शिरा होती है। यथा -

वल्मीकसंवृत्तो यदि तालो व भवति नारिकेरो वा ।
पश्चात् षड्भिर्हस्तैर्नरैश्र्चतुर्भिः शिरा याम्या ।।[16]

जहाँ करील वृक्ष के साथ वैर दिखाई दे तो उनसे तीन हाथ पश्चिम दिशा में 18 पोरसा (2160 अंगुल) नीचे जल मिलता है तथा इसे ऐशानी शिरा कहा जाता है[17]।

2. **फल-पुष्पों से शिरा जल ज्ञानः**- वराहमिहिर के अनुसार जिस वृक्ष के फल-पुष्पों में विकार पैदा हो, उस वृक्ष से तीन हाथ दूरी पर, पूर्व दिशा में चार पुरूष (480 अंगुल) नीचे शिरा (जलधारा) मिलती है तथा जहाँ काँटो से रहित सफेद पुष्पों से युक्त कटेरी नाम वृक्ष दिखाई दे, उस वृक्ष के साढे तीन पोरसा (420 अंगुल) नीचे खोदने पर जल की धारा अर्थात् शिरा निकलती है[18]।

3. **धान्य से शिरा जल की स्थिति ज्ञानः**- पुराने समय में खेतों के धान्य आदि से भी भूमिगत शिरा की स्थिति ज्ञात कर ली जाती थी। वह ज्ञान आज के वर्तमान भौतिक युग में अनुपस्थित है। लेकिन पूर्व युगान्तर में यह देखा जाता था कि यदि खेत में धान्य उत्पन्न होकर नष्ट हो रहा हो, या बहुत अधिक निर्मल धान्य हो रहा हो अथवा धान्य उत्पन्न होकर पीला पड़ जाये, वहाँ पोरसा (240 अंगुल) नीचे बहुत जल बहने वाली शिरा (जलधारा) मिलती है। यथा -

यस्मिन् क्षेत्रोदेशे जातं सस्यं विनाशमुपयाति ।
स्निग्धमतिपाण्डुरं वा महाशिरा नरयुगे तत्र ।।[19]

4. **वाष्प और धूमादि से जल ज्ञानः**- जिस विशेष निर्जन स्थान से वाष्प व धुआं निकलता हुआ दिखाई दे, वहाँ दो पोरसा (240 अंगुल) नीचे प्रचुरतम मात्रा में जल छोड़ने वाली शिरा बहती है[20]।

ब. कुप व बावड़ियाँ के निर्माण में दिशा विचारः- कूपादि निर्माण में दिशा विचार पर वास्तुशास्त्रानुकूल विचार किया गया है। किसी ग्राम या नगर में आग्नेय कोण में (दक्षिण-पूर्व) में कुआं नहीं होना चाहिए क्योंकि यदि ऐसा हो तो कुऐं का जल जल्द ही सुख जाता है तथा जहाँ वह कुआं है वहाँ अग्निभय भी उत्पन्न करता है जिससे जन हानि होती है। नैऋत्य कोण (दक्षिण-पश्चिम) में कूप हो तो बालकों का क्षय भय तथा वायव्य कोण (उत्तर-पश्चिम) में कूप होने पर स्त्रियों को भी भय देता है[21]। आधुनिक वास्तुशास्त्री भी इस बात का समर्थन करते हैं कि कुआं, बोरिंग (टयूबवेल), पानी की टंकी, जल संग्रह का स्थान कभी भी आग्नेय, नैऋत्य एवं वायत्य में नहीं होना चाहिए[22]। ऐसा होने पर वहाँ का जल सुख जाता है। कुछ विद्वानों ने आग्नेय कोण में जल संग्रह को निष्फल कहते हुए पुत्र मृत्यु का कारण माना है। जल का संग्रहण ईशान कोण (उत्तर-पूर्व) में ही शुभ है। पश्चिम दिशा में सम्पत्ति दायक है[23]। आज वर्तमान में बावड़ियाँ का संग्रहित जल प्राणियों के लिए उपयोग में आता है। इसका कारण भी उनके निर्माण में प्रयुक्त हुई दिशा ही है। पश्चिम और पूर्व दिशा को लम्बी फैली हुई वापी बहुत काल तक जल को संग्रहित रखती है। उत्तर-दक्षिण या दक्षिण-उत्तर दिशा में फैली लम्बी वापी में जल बहुत काल तक संग्रहित नहीं रहता है शीघ्र सुख जाता है[24]। यथा -

पाली प्रागपरायताम्बु सुचिरं धत्ते न याम्योत्तरा
कल्लोलैरवदारमेति मरूता सा प्रायशः प्रेरितैः ।।

स. कुपादि खोदने में मुहूर्त परिज्ञान - जल युक्त शिराओं युक्त भूमि का शोधन हो जाये तो ही कूंपारम्भ के मुहूर्त की आवश्यकता होती है। 27 नक्षत्रों में से हस्त, मघा, अनुराधा, पुष्य, धनिष्ठा तीनों उत्तरा, रोहिणी व शतभिषा यह 10 नक्षत्र ही शुभ फलदायक होते हैं[25]। यथा -

हस्तो मघानुराधापुष्यधनिष्ठोत्तराणि रोहिण्यः।
शतभिषगित्यारम्भे कूपानां शस्यते भगणः।।

आज वर्तमान में कूपादि को स्वच्छ रखने के लिए कई प्रकार की औषधियाँ उसमें डाली जाती है जो कि मानव शरीर को आधुनिक मात्रा में नुकसान पहुँचाती है। लेकिन वैदांग ज्योतिष के अनुसार कूपादि में अंजन, मोथा, खस, राजकोशातकी, आँवला और कतकफल से युक्त समभाग के चूर्ण का योग डालना प्रस्तावित है[26]। जिससे कूपादी का जल गन्दा, कड़ुवा, खारा, बिना स्वाद या दुर्गन्धयुक्त ना होकर निर्मल, स्वच्छ, सरस, सुन्दर गन्धयुक्त और अन्य अनेक प्रकार के गुणों से युक्त हो जाता है[27]। अतः जल प्रबंधन की ऐतिहासिक व आधुनिक तुलना अनिवार्य है जिसमें ज्योतिषीय परिपेक्ष्य तो उपरोक्त कारणों से स्वयं सिद्ध है। हमें ज्योतिषिक प्रमाणिकता को ध्यान में रखते हुए वर्तमान समय में उपरोक्त समीकरण अधिग्रहित करते हुए भविष्य

में जल प्रबंधन की समस्याओं को प्रतिउत्तर करना अर्थात् दूर करना ही होगा।।

प्रस्तावना

1. पानी की खोज, श्री हनुमन् ज्योतिष मन्दिर, कानपुर, प्रकाशन 1984, पृष्ठ 1
2. बृहत्सहिंता, अध्याय 54, श्लोक 1, पृष्ठ 275
3. बृहत्सहिंता,दकार्गलाध्याय 54, श्लोक 94, पृष्ठ 289
4. बृहत्सहिंता,दकार्गलाध्याय 54, श्लोक 93, पृष्ठ 289
5. बृहत्सहिंता,दकार्गलाध्याय 54, श्लोक 31, पृष्ठ 276
6. बृहत्सहिंता,दकार्गलाध्याय 54, श्लोक 4, पृष्ठ 276
7. बृहत्सहिंता,दकार्गलाध्याय 54, श्लोक 5, पृष्ठ 276
8. बृहत्सहिंता,दकार्गलाध्याय 54, श्लोक 54, पृष्ठ 283
9. बृहत्सहिंता,दकार्गलाध्याय 54, श्लोक 100-101, पृष्ठ 290
10. बृहत्सहिंता,दकार्गलाध्याय 54, श्लोक 6, पृष्ठ 276
11. बृहत्सहिंता,दकार्गलाध्याय 54, श्लोक 7, पृष्ठ 276
12. बृहत्सहिंता,दकार्गलाध्याय 54, श्लोक 17, पृष्ठ 278
13. बृहत्सहिंता,दकार्गलाध्याय 54, श्लोक 23, पृष्ठ 279
14. बृहत्सहिंता,दकार्गलाध्याय 54, श्लोक 37-38, पृष्ठ 281
15. बृहत्सहिंता,दकार्गलाध्याय 54, श्लोक 41-42, पृष्ठ 281
16. बृहत्सहिंता,दकार्गलाध्याय 54, श्लोक 40, पृष्ठ 281
17. बृहत्सहिंता,दकार्गलाध्याय 54, श्लोक 74, पृष्ठ 286
18. बृहत्सहिंता,दकार्गलाध्याय 54, श्लोक 56-57, पृष्ठ 283
19. बृहत्सहिंता,दकार्गलाध्याय 54, श्लोक 61, पृष्ठ 284
20. बृहत्सहिंता,दकार्गलाध्याय 54, श्लोक 60, पृष्ठ 284
21. बृहत्सहिंता,दकार्गलाध्याय 54, श्लोक 97-98, पृष्ठ 289
22. वास्तु संदेश/प्रकाशन 1970/गोरू वास्तु प्लावर्स/हैदराबाद/पृ. 140
23. ज्योतिष में भवन और कीर्तियोग/डायमण्ड प्रकाशन/दिल्ली/पृ. 109
24. बृहत्सहिंता,दकार्गलाध्याय 54/श्लोक 118/पृ. 293
25. बृहत्सहिंता,दकार्गलाध्याय 54/श्लोक 123/पृ. 294
26. बृहत्सहिंता,दकार्गलाध्याय 54/श्लोक 121/पृ. 293
27. बृहत्सहिंता,दकार्गलाध्याय 54/श्लोक 122/पृ. 293